मंथन क्रमांक –35

आर्थिक असमानता का परिणाम और समाधान

प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार होता है कि वह प्रतिस्पर्धा करते हुये किसी भी सीमा तक धन सम्पत्ति संग्रह कर सकता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक कर्तव्य होता है कि वह काफिला पद्धति का अनुशरण करते हुये संकटो से घिरे व्यक्तियों को सहायता करे। राज्य का यह दायित्व होता है कि वह प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा में आने वाली बाधाओं को दूर करे। साथ ही राज्य का स्वैच्छिक कर्तव्य होता है कि वह कमजोर लोगों को समाज द्वारा की जाने वाली सहायता में मदद करे।

राज्य समाज के लिए एक आवश्यक बुराई के समान माना जाता है। राजनेता पूरी दुनियां और विशेषकर भारत के लिए सबसे अधिक खतरनाक जीव के रुप में स्थापित हो गया है। वह बिल्लियों के बीच बंदर के समान स्वयं समस्याओं का समाधान भी नहीं करता, समस्याओं का समाधान होने भी नहीं देता और उसमें अनावश्यक हस्तक्षेप करके समस्याओं के प्रयत्न का नाटक भी करता रहता है । आर्थिक असमानता भी ऐसी ही आर्थिक समस्या है जिसे राजनेता सुलझाना नहीं चाहते, समाज को सुलझाने भी नहीं देते और 70 वर्षो से आज तक सुलझाने का नाटक करते रहे है। 70 वर्षो से गरीबी दूर करने की कोशिश हो रही है और अब तक दूर नहीं हो पायी, न कभी भविष्य में दूर होने के लक्षण दिखते है।

स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के बाद आज तक आर्थिक असमानता तेज गति से बढती जा रही है। गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी, बैलगाडी की रफ्तार से आगे बढ रहा है तो बुद्धिजीवी ट्रेन तथा पूँजीपति हवाई जहाज की रफ्तार से। गरीब और अमीर के बीच खाई लगातार बढ रही है। भारत लगातार विकास कर रहा है किन्तु 33 प्रतिशत निचली आबादी का 70 वर्षो में जीवन स्तर सिर्फ दोगुना बढ़ा है तो 33 प्रतिशत मिडिल क्लास अर्थात बुद्धिजीवियों का 8 गुना तथा 33 प्रतिशत उपर क्लास का 64 गुना। इसका अर्थ हुआ कि आर्थिक असमानता स्वतंत्रता के बाद 32 गुना और अधिक बढ़ गई है। यदि विकास दर 7 के जगह 10 हो जाये तब यह आर्थिक असमानता और अधिक तेज गति से बढ़ जायेगी। जिस गरीबी रेखा की बात की जा रही है वह रेखा प्रतिव्यक्ति 30 रु. प्रति दिन के आसपास है। इसका अर्थ हुआ कि भारत के 20 करोड़ व्यक्ति आज भी 30 रु. से कम में गुजर बसर करने को मजबूर है। इसे किस तरह न्याय संगत ठहराया जाये यह समझ में नहीं आता। जो भारत राज्य के माध्यम से दुनियां से विकसित राष्ट्र बनने की होड कर रहा है उस भारत के 20 करोड लोगों की यह स्थिति दयनीय दिखती है। दूसरी ओर इतनी खराब दयनीय स्थिति होते हुए भी हमारा समाज मंदिरों, धर्मगुरुओं, खेल प्रतिस्पर्धाओं, पूजा और त्यौहारों पर अरबों–खरबों रुपये स्वैच्छा से खर्च कर रहा है, किन्तु अपने काफीले के साथ चल रहे भाइयों पर उसे दया नहीं आती। आश्चर्य है कि भगवान पर सर्वस्व न्यौछावर और इन्सान की कोई चिंता नहीं। स्पष्ट है कि आर्थिक असमानता के परिणाम स्वरुप समाज में द्वेष का भाव बढ रहा है। अमीर और गरीब के बीच प्रेम सदभाव ईर्ष्या और विद्वेष में बदल रहा है। लगातार बढती जा रही आर्थिक असमानता कमजोर वर्गो में यह विश्वास पैदा कर रही है कि उनके साथ अन्याय हो रहा है। कमजोर वर्गो को यह पता नहीं चल रहा कि समाज और राज्य उनका सहायक है, या शोषक। मैं स्पष्ट हूँ कि आर्थिक असमानता का लगातार बढ़ते जाना समाज में अशांति का एक प्रमुख आधार बन रहा है। ऐसी परिस्थिति में तात्कालिक रुप से राज्य का यह कर्तव्य होता है कि वह एक आर्थिक सीमा बनाकर उसके उपर के लोगों से अपनी शासकीय आवश्यकताओं की पूर्ति टैक्स के रुप में करे। उस सीमा से नीचे वालो को पूरी तरह टैक्स फ्री कर दे। साथ–साथ उसे यह भी चाहिये कि वह आर्थिक असमानता के कम होने तक के अल्पकाल के लिए उस सीमा रेखा से नीचे वालो की आर्थिक सहायता करे। मैं स्पष्ट कर दूँ कि वर्तमान समय में राज्य की नीतियां इसके ठीक विपरीत हैं अर्थात राज्य गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवियों को सुविधा की तुलना में कई गुना अधिक अप्रत्यक्ष कर वसूलता है तथा शहरी बुद्धिजीवी, पूँजीपतियों को टैक्स की तुलना में कई गुना अधिक सहायता देता है। मैंने इस मुद्दे पर पूरा–पूरा शोध करके यह निष्कर्ष निकाला है और तब मैं इतना बड़ा गंभीर आरोप लगा रहा हूँ। मेरे विचार में राज्य की सम्पूर्ण अर्थनीति में तत्काल आमूलचूल बदलाव की आवश्यकता है।

फिर भी मैं राज्य के अर्थ नीति में बदलाव लाकर गरीबों को आर्थिक सहायता देने को एक अस्थायी समाधान मानता हूँ, वास्तविक और दीर्घकालिक नहीं। आर्थिक असमानता लगातार बढ़ने का कारण श्रमशोषण में निहित है। भारत की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर बुद्धिजीवियों और पूँजीपतियों का एकछत्र अधिकार है। वे गरीब ग्रामीण श्रमजीवियों को धोखा देने के लिए उनके नाम पर ऐसी नीतियां बनाते है जिससे गरीब और श्रमजीवी कभी उपर न आ सके और बुद्धिजीवी पूँजीपति दिन दुगने रात चौगुने बढ़ते रहें। सारी अर्थनीतियां उपभोक्ताओं के पक्ष में तथा उत्पादकों के विरुद्ध बनाई जाती हैं। इसी तरह श्रम शोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली कृत्रिम उर्जा को सस्ता करके रखा जाता है। बुद्धिजीवियों के हित में

श्रमजीवियों से टैक्स लेकर शिक्षा पर अनाप सनाप खर्च किया जाता है। एक षड़यंत्र के अन्तर्गत श्रम का मूल्य अनावश्यक रुप से बढ़ाकर रखा जाता है । इन तीनों प्रयत्नों का परिणाम होता है कि श्रम की मांग घटती चली जाती है और जब मांग घटती है तब मूल्य घटना स्वाभाविक प्रकिया है। शिक्षित बेरोजगार के नाम पर श्रम शोषण का एक नया अध्याय खोल दिया जाता है। दुनियां जानती है कि शिक्षित व्यक्ति उचित रोजगार की प्रतिक्षा में रहता है, बेरोजगार नहीं। किन्तु बेरोजगारी की एक झूठी परिभाषा बनाकर श्रमशोषण का मार्ग प्रशस्त कर दिया जाता है। यह भी स्पष्ट है कि श्रम ही नये रोजगार का सृजन कर सकता है। शिक्षा तो रोजगार का स्थान परिवर्तन मात्र करती है। उद्योग धंधे भी रोजगार बढ़ाते नहीं बल्कि जितना रोजगार देते है उससे कई गुना अधिक रोजगार छीनते है। फिर भी हमारी राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था शिक्षा और उद्योग धंधो को श्रम की तुलना में अधिक महत्व देती रहती है।

स्वतंत्रता के पूर्व भी हजारों वर्षो से बुद्धिजीवियों ने सामाजिक आधार पर श्रमशोषण की नीतियां बनाई थी। स्वतंत्रता के बाद श्रमशोषण की उन नीतियों में आर्थिक आधार भी जुड गया। गरीबी हटाओं और आर्थिक न्याय भारत के सत्तालोलुप लोगो का एक सफल हथियार बना हुआ है। हर सत्ता लोलुप आर्थिक असमानता दूर करने के नाम पर राज्य को प्रशासनिक आधार पर अधिक शक्तिशाली बनाने की मांग करता है किन्तु कभी यह मांग नहीं करता कि समाज में स्वाभाविक रुप से श्रम की मांग बढे और गरीब ग्रामीण श्रमजीवी को सरकार या किसी अन्य के समक्ष हाथ फैलाने की आवश्यकता न पडे। श्रममूल्य इतना अधिक हो कि आर्थिक असमानता अपने आप घट जाये। जो लोग टैक्स बढाकर गरीबों में बांटने की बात करते है उनका हिडेन एजेंडा सत्ता के प्रति आकर्षण होता है, समाधान नहीं। क्योंकि समाधान श्रम मूल्य वृद्धि में निहित है और ये सत्ता लोलुप धन लेकर बांटने को समाधान बताते है । मैं समझता हूॅ कि सब्सिडी की भीख अल्पकालिक समाधान हो सकती है न्यायोचित और दीर्घकालिक समाधान नहीं।

तकनीक का विकास एक ओर तो विकास में सहायक होता है तो दूसरी ओर श्रमशोषण भी बहुत तीव्र गति से करता है। इसलिए तकनीक का तेज विकास इस तरह योजना बनाकर किया जाना चाहिये कि वह विकास तो करे किन्तु श्रमशोषण न कर सके। हमें आर्थिक असमानता दूर करने के लिए श्रमशोषण मुक्ति के साथ तालमेल बिठाकर प्रयत्न करना होगा। श्रम की मांग बढे और उसका मूल्य बढे यह सबसे अच्छा समाधान दिखता है किन्तु बुद्धिजीवियों, पूॅजीपतियों और राजनेताओं ने मिलकर श्रम शोषण का ऐसा तानाबाना बुन रखा है कि बेचारा ग्रामीण श्रमजीवी कुए के बाहर की दुनियां देख ही नहीं पाता। मैं जानता हूॅ कि श्रमशोषण में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका साम्यवादियों की रही है। उनका यह मानना रहा है कि यदि श्रमशोषण बंद हो गया तो उनकी राजनैतिक महत्वाकांक्षाए अधूरी रह जायेंगी। अब तो ऐसी स्थिति हो गई है कि आर्थिक असमानता दूर करने के नाम पर अनेक और भी ऐसी दुकाने खुल गई है। मैंने इस आधार पर खूब विचार किया कि श्रम की मांग बढे जिससे श्रम का मूल्य बढे और आर्थिक असमानता अपने आप समाप्त हो जाये। इसके लिए तत्काल चार कदम उठाने की आवश्यकता हैं–

1) कृत्रिम उर्जा की भारी मूल्य वृद्धि करके अन्य सारे टैक्स समाप्त कर दिये जायें। यदि आवश्यक हो तो इनकम टैक्स भी समाप्त किया जा सकता है।

2) शिक्षा को पूरी तरह राज्य से मुक्त कर दिया जाये और उस पर सरकार कोई बजट खर्च न करें।

3) श्रममूल्य वृद्धि की घोषणा बंद कर दी जाये और श्रम मूल्य को सरकार वहीं तक घोषित करने को बाध्य हो जिसके नीचे रहने वालो को वह अनिवार्य रुप से रोजगार देने में सक्षम है, अन्यथा नहीं।

4) सभी प्रकार के जातीय धार्मिक या अन्य आरक्षण समाप्त कर दिये जाये। यहॉ तक कि आर्थिक आधार पर भी किसी को कोई आरक्षण न दिया जाये।

मै यह स्पष्ट कर दूं कि आर्थिक असमानता पर नियंत्रण किये बिना समाज मे अशान्ति दूर नही हो सकेगी तथा श्रम की मांग वृद्धि ही इसका एक मात्र समाधान है। मैं समझता हूॅ कि इस प्रयत्न का सब प्रकार के सत्तालोलुप लोग विरोध करेंगे क्योंकि इससे तो उनका सत्ता संघर्ष का महत्वपूर्ण हथियार ही छिन जायेगा। लेकिन मेरे विचार से यह एक महत्वपूर्ण समाधान है जो भारत की सभी आर्थिक समस्याओं का निराकरण कर सकता है।

मंथन क्रमांक 36

वर्ग संघर्ष, एक सुनियोजित षडयंत्र

कुछ स्वयं सिद्ध यथार्थ हैं–

(1) शासन दो प्रकार के होते हैं:–(1) तानाशाही (2) लोकतंत्र। तानाशाही में शासक जनता की दया पर निर्भर नहीं होता इसलिए उसे वर्ग निमार्ण की जरुरत नहीं पडती। तानाशाही में वर्ग संघर्ष होता ही नहीं है। लोकतंत्र

में शासक लोक की एकता से भयभीत रहता है इसलिए वह लोक को विभिन्न वर्गो में बांटकर वर्ग संघर्ष बढाता रहता है। लोकतंत्र भी दो प्रकार का है–(1) आदर्श (2) विकृत। भारत विकृत लोकतंत्र की श्रेणी में आता है इसलिए भारत सबसे अधिक वर्ग संघर्ष का सहारा लेता है।

(2) आदर्श स्थिति में वर्ग दो प्रकार के होते हैं–(1) शरीफ (2) अपराधी। विकृत लोकतंत्र में वर्ग दो हो जाते हैं–(1) शासक (2) शासित।

(3) वर्ग संघर्ष के तीन चरण होते हैं– (1) वर्ग निमार्ण (2) वर्ग विद्वेष (3) वर्ग संघर्ष।

(4) यदि किसी भी वर्ग को विशेष अधिकार दिये जाते है तो उस वर्ग के धूर्त शक्तिशाली होते है तथा विपरीत वर्ग के शरीफो का शोषण करते है। इस तरह से सम्पूर्ण समाज में शरीफ कमजोर और धूर्त मजबूत होते जाते है।

(5) कमजोरों की मदद करना मजबूतों का कर्तव्य होता है, कमजोरों का अधिकार नहीं। हर अपराधी और राजनेता अपने स्वार्थ के लिए इसे कमजोरों का अधिकार घोषित करते है।

(6) किसी भी वर्ग में सबकी प्रवृत्ति एक समान नहीं होती। कुछ लोग शरीफ होते है तो कुछ अपराधी या धूर्त।

(7) हर अपराधी वर्ग निर्माण में अपनी सुरक्षा देखता है और हर राजनेता वर्ग निर्माण के माध्यम से समाज को बांटकर अपना खतरा कम करते रहते हैं।

(8) किसी भी वर्ग का परीक्षण किया जाये तो उसका नेतृत्व या विस्तारक या तो कोई अपराधी होता है या नेता।

भारत में आठ आधारों पर वर्ग बने हुये हैं– (1) धर्म (2) जाति (3) भाषा (4) क्षेत्रियता (5) उम्र (6) लिंग (7) गरीब–अमीर (8) उत्पादक–उपभोक्ता। सभी राजनैतिक दल आठों आधारों पर निरंतर वर्ग संघर्ष बढाने का प्रयास कर रहे है। कोई भी राजनैतिक दल इस प्रतिस्पर्धा में किसी से पीछे नहीं है। छः आधारों पर तो समाज को तोडा जा रहा है तो उम्र और लिंग भेद के आधार पर परिवारों को तोडने के प्रयत्न हो रहे हैं। युवा और वृद्ध तथा महिला और पुरुष के बीच वर्ग विद्वेष निरंतर बढाया जा रहा है जिससे परिवार व्यवस्था छिन्न भिन्न हो जाये। अब छः आधारों पर तो स्थिति वर्ग संघर्ष तक चली गई है और दो आधारो पर वर्ग विद्वेष जारी है। अब कुछ नये वर्ग निर्माण भी शुरु हो गये है। इनमें शहर और गांव का नया वर्ग बन रहा है धीरे–धीरे इसे भी वर्ग विद्वेष और वर्ग संघर्ष तक पहुचाया जायेगा।

दुनियां जानती है कि वर्ग संघर्ष के विनाशकारी परिणाम हुये है। दुनियां में जितने अत्याचार और हत्यायें अपराधियों ने नहीं की है उससे कई गुना अधिक धर्म और राष्ट्र के नाम पर हुई है। भारत में भी भाषा और क्षेत्रियता ने अपराधों का रिकार्ड तोड़ा है। स्वतंत्रता के पूर्व ही वर्ग निर्माण ने ही भारत को बहुत पिछे ढकेल रखा था। सवर्ण–अवर्ण का वैमनस्य जग जाहिर है। पाकिस्तान और भारत का विभाजन भी इसी वर्ग विद्वेष का परिणाम रहा है। इन सबको देखते हुए भी हमारे भारत के राजनेता वर्ग संघर्ष को निरंतर बढावा देते रहते है। दिल्ली राजघाट पर सरकार का एक बोर्ड लगा है जिसमें लिखा है ''महिलाओ पर अत्याचार कानूनन अपराध है''। आज तक किसी राष्ट्र भक्त या बुद्धिजीवी ने यह प्रश्न नहीं पूछा कि किसके उपर अत्याचार अपराध नहीं है। यह महिला शब्द लिखने की आवश्यकता ही प्रमाणित करती है कि राजनेताओं की नीयत खराब है। कुछ नेता कन्या भ्रूण हत्या के विरुद्ध भी जोरदार आवाज उठाते है। जब बालक भ्रूण हत्या होती ही नही तो कन्या शब्द लिखना क्यों आवश्यक है? यह प्रश्न नहीं उठाते क्योंकि सबका स्वार्थ वर्ग विद्वेष, वर्ग संघर्ष के प्रोत्साहन में छिपा हैं।

हम भारत के विभिन्न राजनैतिक दलों की समीक्षा करें तो सभी राजनैतिक दल पूरी ईमानदारी से आठो प्रकार के वर्ग संघर्ष को प्रोत्साहित करते रहते है। किन्तु उनमें भी कांग्रेस पार्टी शासक और शासित की भावना भारतीय जनता पार्टी, हिन्दू मुसलमान, शिवसेना क्षेत्रियता, दक्षिण भारत के दल भाषा तथा वामपंथी दल गरीब अमीर के बीच वर्ग संघर्ष को अधिक प्राथमिकता देते हैं। जो लोग अमीरी रेखा और गरीबी रेखा की बात करते है वे मध्य रेखा की बात नहीं करते क्योकि मध्य रेखा शब्द में वह वर्ग निर्माण नहीं दिखता जो अमीरी रेखा में दिखता है। कुछ लोग आर्थिक न्याय सामाजिक न्याय की बहुत चर्चा करते है किन्तु उन्हें श्रम के साथ अन्याय, राजनैतिक असमानता का अन्याय नहीं दिखता। उन्हें बुद्धिजीवी पूँजीपतियों की एकाधिकारवादी अर्थनीति के दुष्परिणाम नहीं दिखते। उन्हें न्याय की मांग करने में बहुत आनंद आता है किन्तु वे कभी व्यवस्था की बात नहीं करते। जबकि न्याय और व्यवस्था के बीच संतुलन आवश्यक है।

वर्ग निर्माण से वर्ग संघर्ष तक भारत के लिये एक बहुत विनाशकारी खतरा है। अपराधियों और राजनेताओं द्वारा इस समस्या को निरंतर बढाया जा रहा है। क्योंकि वर्ग निर्माण ही अपराधियो के लिये सुरक्षा कवच का काम करता है। वर्ग अपराधियो का संगठित ढाल बन जाता है। राजनेताओ को तो इससे पूरा का पूरा लाभ है ही। इसलिये इस समस्या से मुक्त होना हमारी बडी प्राथमिकता है। एक साधारण सा बदलाव

करना चाहिये कि कमजोरो की सहायता करना मजबूतो का कर्तब्य है। कमजोरो का अधिकार नही। इसी तरह यह बात भी स्थापित होनी चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार समान है। किसी को किसी भी परिस्थिति में विशेष सुविधा दी जा सकती है विशेष अधिकार नहीं। यह बात भी सुनिश्चित करनी चाहिये कि आर्थिक समस्याओ का आर्थिक तरीके से समाधान तथा सामाजिक समस्याओं का सामाजिक समाधान करे। सिर्फ प्रशासनिक समस्यों का ही प्रशासनिक समाधान करना चाहिये। समान नागरिक संहिता भी एक अच्छा समाधान है। और भी समाधान खोजे जा सकते है।

वर्तमान भारत मे दो मार्ग दिख रहे है–(1) तानाशाही (2) लोकस्वराज्य। भारत वर्तमान में तानाशाही के मार्ग से इस समस्या के समाधान की दिशा में बढ़ रहा है। पिछले तीन वर्षो से मोदी जी के आने के बाद जाति, भाषा, क्षेत्रियता, उम्र, उत्पादक उपभोक्ता, गरीब अमीर, के बीच के वर्ग संघर्ष कम हुये है। महिला और पुरुष के बीच महिला सशक्तिकरण के नाम से वर्ग विद्वेष बढ रहा है। धर्म के नाम से सत्तर वर्षो से चला आ रहा वर्ग संघर्ष विपरीत दिशा में जाता दिख रहा है। परिणाम क्या होगा पता नहीं। किन्तु इतना स्पष्ट दिख रहा है कि वर्ग संघर्ष घटेगा। फिर भी तानाशाही के माध्यम से वर्ग संघर्ष का समाप्त होना एक अस्थायी समाधान भले ही हो किन्तु आदर्श स्थिति नहीं कहीं जा सकती। वर्ग संघर्ष से मुक्त होने के लिए आदर्श मार्ग तो सहभागी लोकतंत्र ही हो सकता है जिसमें समाज के विभिन्न अंग शक्तिशाली हो तथा राज्य की भूमिका बहुत कम हो जाये। संभव है कि नरेन्द्र मोदी इस दिशा में भी अच्छा सोचने का प्रयास करेंगे। अन्यथा समाज व्यवस्था उन्हें इस दिशा में चलने के लिए तैयार कर लेगी। मैं इस गंभीर खतरे के समाधान के प्रति आशान्वित हूँ।

मंथन क्रमांक 37

मृत्युदण्ड समीक्षा

कोई भी व्यवस्था तीन इकाईयों के तालमेल से चलती है– (1) व्यक्ति (2) समाज (3) राज्य। व्यक्ति का स्वशासन होता है। समाज का अनुशासन और राज्य का शासन होता है। बहुत कम व्यक्ति उचित अनुचित का निर्णय कर पाते है अन्यथा अधिकांश व्यक्ति या तो ईश्वर के भय से ठीक चलते है या सामाजिक बहिष्कार के डर से। और यदि दोनों का भय न हो या असफल हो जाये तब दण्ड का भय ही उन्हें रोक सकता है। स्पष्ट कर दूँ कि समाज या तो समझा सकता है या सिर्फ बहिष्कार कर सकता है दण्डित नहीं कर सकता। दण्ड तो राज्य ही दे सकता है। वर्तमान समय में ईश्वर का भय सीमित होता जा रहा है। समाज तोड दिया गया है और राज्य अपना काम छोडकर समाज या ईश्वर के काम में लग गया है। आदर्श स्थिति में समाज को भय रहित होना चाहिये और अपराधियों को भयभीत। भारत में समाज विभिन्न कानूनों के कारण भयग्रस्त है और अपराधी लगभग भय मुक्त।

किसी अपराध के लिए दण्ड की मात्रा और तरीका क्या हो यह किसी सिद्धांत पर निर्भर न होकर परिस्थितियों पर निर्भर करता है। उद्देश्य है अपराधियों को भयग्रस्त करना। दण्ड की मात्रा और तरीका उसी पर निर्भर करता है। कोई भी दण्ड कभी मानवीय नहीं हो सकता। इसलिए दण्ड की मात्रा और तरीका समाज पर पडने वाले प्रभाव और मानवता के बीच तालमेल करके चलता है। दण्ड मानवीय हो यह कथन पूरी तरह अव्यवस्था फैलाने वाला है। यदि हम वर्तमान अव्यवस्था की समीक्षा करें तो उसका सबसे बडा कारण यह है कि दण्ड और मानवता को एक साथ जोड दिया गया। कुछ लोग तो यहाॅ तक सक्रिय दिखे कि उन्हें बाहर के लोगों के जीवन स्तर की कभी चिंता नहीं रही किन्तु जेल सुधार के नाम पर उन्होने सारा जीवन खपा दिया। किरण बेदी स्पष्ट उदाहरण हैं।

दण्ड में भी फांसी हो या ना हो यह चर्चा का विषय नहीं हो सकता। दण्ड के तीन उददेश्य होते हैं– (1) अपराधियों में सुधार (2) पीडित को संतोष (3) समाज में अपराध के प्रति भय का संदेश। यदि हम फांसी की सजा पर चर्चा को केन्द्रित करें तो इसमें व्यक्ति के सुधार की कोई गुंजाइश नहीं है। पीड़ित को संतोष भी सामान्य सरीखा ही होता है। किन्तु समाज को दिया जाने वाला संदेश बहुत अधिक महत्वपूर्ण होता है और इस संदेश की बहुत आवश्यकता है। यही कारण है कि राज्य समय–समय पर मृत्युदण्ड का उपयोग करता है। मृत्युदण्ड को घोषित रुप से तो कभी बंद करना ही नहीं चाहिये। बल्कि यदि समाज में अपराधी भय मुक्त हो रहे है तो मृत्युदण्ड की मात्रा को अधिक बढा देना चाहिए। मैंने मृत्युदण्ड विरोधी विचारधारा के कुछ लोगों का ऑकलन किया तो अधिकांश या तो किसी विदेशी धन प्राप्त संगठन के सदस्य मिले अथवा साम्यवादी विचारधारा के लोग। साम्यवादी प्रभाव वाले देशों में किस तरह आम लोगों को खुलेआम मार दिया गया, लाखों करोडो की संख्या में यह विश्व विदित है। आज भी वामपंथ प्रभावित नक्सलवादी किस तरह मृत्युदण्ड देते है यह मैंने स्वयं देखा है। इसलिए ऐसे लोगों की चर्चा करना व्यर्थ है। मेरे विचार में वर्तमान समय में भारत में फांसी की सजा को और अधिक उपयोग में लाने की जरुरत है। यदि इसके बाद भी प्रभाव न पडता दिखे तो खुली फांसी का भी प्रयोग किया जा सकता है और यदि आवश्यक हो तो नमूने के तौर पर

इससे भी अधिक वीभत्स तरीके से मृत्युदण्ड दिया जा सकता है। किन्तु यह नहीं हो सकता कि अपराधियों के मन से भय निकल जाये।

इन सबके बाद भी मैं इस पक्ष का हूँ कि न्यायपालिका पूरी तरह स्वतंत्र होनी भी चाहिये और दिखनी भी चाहिये। मृत्युदण्ड के मामले में विशेष रुप से न्यायपालिका को सतर्क रहना चाहिये कि कोई निरपराध दण्ड न पा जाये और कोई अपराधी बच न जाये। इस प्रकार के गंभीर अपराधों का निपटारा भी एक वर्ष के अंदर हो जाना चाहिये भले ही अन्य कार्य क्यों न पिछड जाये। इस प्रकार के गंभीर अपराधों में न्यायपालिका को गुप्तचर न्यायालय की भी सहायता लेनी चाहिये। जिससे निष्पक्षता प्रभावित न हो।

फिर भी मैं मृत्युदण्ड का एक विकल्प प्रस्तावित कर रहा हूँ। मृत्युदण्ड का मुख्य उददेश्य समाज पर पडने वाला दीर्घकालिक प्रभाव है। फांसी दे देने के बाद कुछ वर्षो में वह प्रभाव भूल जाता है। मैं सोचता हूँ कि यदि फांसी की सजा पाया व्यक्ति न्यायालय से जमानत देकर निवेदन करे कि वह कुछ समय के लिए दोनों आंख निकालकर तथा अंधा रहकर जीना चाहता है तो न्यायालय उसे उचित शर्तो और उचित जमानत के आधार पर तब तक के लिए छोड सकता है जब तक वह स्वयं और जमानत देने वाला सहमत है। यह सुझाव मृत्युदण्ड घोषित व्यक्ति के लिए एक विकल्प के रुप में है, बाध्यकारी नहीं । जमानत देना न्यायालय के लिए भी बाध्यकारी नहीं है।

मैं उचित समझता हूँ कि फांसी की सजा सदा के लिए बंद हो जाये इसके लिए आवश्यक है कि एक बार कुछ अधिक फांसी देकर आम अपराधियों में भय का वातावरण पैदा किया जाये। इसका एक लोकतांत्रिक तरीका हो सकता है कि पूरे देश में घोषित कर दिया जाये कि तीन महिने की अवधि में 50 ऐसे लोगों को चुनकर फांसी दी जायेगी जिन्हें गुप्तचर पुलिस द्वारा गुप्त रुप से प्रस्तुत मुकदमें तथा गुप्तचर न्यायालय द्वारा गुप्त रुप से जांच करके दिये गये दण्ड पर आधारित हो । हो सकता है कि कुछ बडे प्रभावशाली लोग या राजनेता भी इस चपेट में आ जाये। कोई अन्य तरीका भी सोचा जा सकता है। किन्तु समाज में दण्ड का भय तो मजबूत होना ही चाहिये। इसके साथ ही फांसी के मेरे प्रस्तावित फार्मूले पर भी विचार किया जाये। हो सकता है कि मेरा प्रस्तावित फार्मुला फांसी की सजा से भी मुक्त करा दे और समाज में अपराधों के प्रति भय भी अधिक व्यापक हो जाये।

मंथन के अगले विषयः—

38 — महिला वर्ग या परिवार का अंग, 39 स्वतंत्र अर्थपालिका, 40 भ्रष्टाचार ,41 आरक्षण, 42 आश्रमों में बलात्कार, 43 एन जी ओ , 44 शिक्षा व्यवस्था होगा।

प्रश्नोत्तर

1 सूरज प्रसाद श्रीवास्तव फेसबुक से

प्रश्नः—आपने कल श्रमशोषक की पहचान के पांच सूत्र लिखे थे। आप इन सुत्रों को कुछ विस्तार से बताने की कृपा करें।

उत्तरः—श्रमशोषण के पांच सूत्र इस प्रकार है—

1) भारत में स्वतंत्रता के बाद महंगाई निरंतर घटी है। सोना, चांदी, जमीन कई गुना अधिक महंगे हुये है, तो रोटी कपडा तथा अन्य सभी उपभोक्ता वस्तुए सस्ती या बहुत सस्ती हुई। स्वतंत्रता के बाद भारत में रुपये का मूल्य 91 रुपये के बराबर है। इस आधार पर महंगाई का हल्ला उपभोक्ता अपने हित में करते है उत्पादक की समस्याओं का चिंता नहीं करते। किसान आत्महत्या करते है तो उपभोक्ताओं का जीवन स्तर उपर से उपर जा रहा है।

2) कृत्रिम उर्जा श्रम की प्रतिस्पर्धी है और बुद्धिजीवी पूँजीपतियों की सहायक। भारत का 33 प्रतिशत सम्पन्न व्यक्ति अपने उत्पादन और उपभोग में 70 प्रतिशत कृत्रिम उर्जा तथा 5 प्रतिशत मानवीय उर्जा का उपभोग करता है तो 33 प्रतिशत गरीब ग्रामीण श्रमजीवी सिर्फ 5 प्रतिशत कृत्रिम उर्जा तथा 95 प्रतिशत मानवीय उर्जा। यदि गरीब ग्रामीण श्रमजीवियो को सब प्रकार के टैक्सों से मुक्त करके सारा टैक्स कृत्रिम उर्जा पर लगा दिया जाये तो भारत की सब प्रकार की समस्याये अपने आप सुलझ जायेंगी। पर्यावरण प्रदूषण घटेगा। शहरी आबादी गांव की ओर लौटेंगी। विदेशी कर्जा कम होगा। आयात निर्यात का संतुलन बनेगा और श्रम का मूल्य अपने आप बढ जायेगा। सरकार के पास इतना अतिरिक्त धन हो जायेगा कि सरकार वह धन आम नागरिकों में बांट भी सकती है।

3) श्रम की मांगवृद्धि श्रम मूल्यवृद्धि की पूरक है। श्रम की मांग बढेगी तभी श्रम का मूल्य बढेगा किन्तु श्रम की मांग बढाने की अपेक्षा हम तकनीक को सस्ता करके श्रमजीवियों को आर्थिक सहायता करना चाहते है क्योकि

बुद्धिजीवियों और पूँजीपतियों की मालिक और गुलाम या दाता और भिखारी की भावना बढती जा रही है। मैं इसके विरुद्ध हूँ। गुलाम और मालिक या दाता और भिखारी की प्रवृत्ति बदलनी चाहिये। और उसका समाधान है श्रम और कृत्रिम उर्जा के बीच प्रतिस्पर्धा बढे।

4) आवागमन को महंगा होना चाहिए क्योंकि आवागमन सस्ता होने से लघु उद्योग समाप्त होकर बडे उद्योग बढ रहे है। मैं चाहता हूँ कि बडे उद्योग विस्तार करे किन्तु लघु उद्योगों को समाप्त करके नहीं बल्कि प्रतिस्पर्धात्मक तरीके से आगे बढे।

5) एक सिद्धांत है कि किसी वस्तु का मूल्य बढता है तो मांग घटती है । इस षडयंत्र के अन्तर्गत ही लोग श्रम का मूल्य बढाने की मांग करते है और सरकारे षडयंत्र के अंतर्गत ही बढाती भी है जिसका परिणाम होता है कि समाज में दो प्रकार के श्रम मूल्य हो जाते है। मैं चाहता हूँ कि सरकार न्यूनतम श्रममूल्य इतना ही घोषित करें जिस पर वह प्रत्येक व्यक्ति को रोजगार देने के लिए बाध्य हो। इसका अर्थ ये हुआ कि बाजार के श्रम मूल्य से अधिक की घोषणा वापस ले लेनी चाहिये। एक तरफ श्रममूल्य की स्वाभाविक वृद्धि में बाधा पैदा करना तो दूसरी ओर कृत्रिम श्रममूल्य बढाने का प्रयास बुद्धिजीवियों का षडयंत्र मात्र है।

2) डॉ अशोक कुमार गदिया, चित्तौडगढ़, राजस्थान

लोक और प्रजातंत्र

विचार—ऐसा कहा जाता है कि प्रजातंत्र में सरकार प्रजा के लिये प्रजा के द्वारा और प्रजा के उपर चुनी जाती है और इसी हिसाब से काम करता है। इस हिसाब से तो प्रजा सर्वोपरि है। प्रजा मालिक है और नेता एवं नौकरशाह उसके सेवक है। अगर गौर से देखे तो व्यवहार में ऐसा है क्या? व्यवहार में ऐसा बिल्कुल नहीं है। सिर्फ चुनाव में वोट के मॉगते वक्त नेता ऐसा कहते है पर करते बिल्कुल नहीं। नौकरशाह तो प्रजा से कोई मतलब कभी नहीं रखते। वह सिर्फ हुकुम ही नहीं चलाते, प्रजा का हर तरह से शोषण भी करते है। ऐसे नियम कानून बनाते है कि प्रजा के लिये उसको पालना मुश्किल हो जाती है। इन्हीं नियम कानूनों की आड में शोषण एवं भ्रष्टाचार का खुला खेल शुरु होता है। जो प्रजा के सेवक बन बैठते है और मनचाहा शोषण कर अपना पेट भरते है। अपने बच्चों का पेट भरते है और अकूत सम्पत्ति इक्ट्ठी कर लेते है। जब प्रजा बहुत परेशान होती है तो वह फिर सत्ता बदल देती है। अपने वोट के अधिकार का उपयोग कर आशा करती है कि नई सरकार कुछ अच्छा करेगी। बेलगाम नौकरशाही पर कुछ लगाम लगाएगी। परन्तु कुछ समय बाद फिर वही राग शुरु हो जाता है। यही प्रजा को बेवकूफ बनाना। शोषण एवं अत्याचार सहना, पुलिस की मार खाना, न्यायालय की प्रताडना सहना। कहने को तो सरकार के ये दो अति महत्वपूर्ण उपाय पुलिस एवं न्यायालय उनके पास है, मगर इनके अधिकांश काम राम भरोसे है। आपकी किस्मत ठीक है तो आपका भला हो जायेगा, वर्ना आपका जो भी हो आप सवाल खडे नहीं कर सकते। देखा जाये तो पुलिस पैसे लिये बिना अपने खास को भी नहीं छोडती और न्यायालय में न्याय मिलते मिलते जमाना बीत जाता है। वहा भी अब पैसा चलने लगा है।

सरकार से काम कराना टेढी खीर है। यदि सरकार के उपर बैठे लोग सख्त और ईमानदार है तो नीचे के लोग कोई काम नहीं करते। क्योंकि यहॉ काम नहीं होने देने के लिये पर्याप्त कानून एवं नियम है। जबकि काम होने के लिये कोई नियम नहीं है। सरकार में बैठे लोग यदि सकारात्मक है, संवेदनशील है जो नीचे बैठे लोग पैसे लिये बिना काम नहीं करते। वसूली का यह पैसा उपर तक पहुँचता है। ऐसे में व्यवस्था तो भ्रष्टाचारी हो ही जाती है। सारी प्रजातांत्रिक व्यवस्था में गरीब, लाचार, मजबूर, परिस्थिति के मारे इन्सान को न तो कोई न्याय मिलता है और न ही कोई आराम। यह बस पिसता ही रहता है। बहुत सोचने के बाद यह समझ आता है कि शासन व्यवस्था जितनी बडी होगी उतनी ही जटिल होगी और आम आदमी की पहुंच से बाहर होगी। उसे कभी न्याय नहीं मिलेगा। जब तक संसाधनों की कमी होगी, तब तक भ्रष्टाचार, भाई भतिजाबाद खत्म नहीं होगा। कम ज्यादा हो सकता है। उधर सरकार जितना सामाजिक काम अपने हाथ में लेगी उतना भ्रष्टाचार बढेगा। सामाजिक संवेदना खत्म होगी और अव्यवस्था का निर्माण होगा।

सामाजिक विकास काम समाज के हाथ में हो। समाज का काम करने वालो को प्रोत्साहन एवं जो सरकार से अनुदान ले उस पर कडी नजर और जो सरकारी अनुदान न ले उसका प्रोत्साहन हो। सरकार सिर्फ आन्तरिक एवं बाहरी सुरक्षा, न्याय व्यवस्था, प्राथमिक शिक्षा स्वास्थ्य एवं आधारभूत विकास पर ध्यान दे। उद्योग, व्यापार एवं अर्थ के नियमन के लिये कम से कम कानून बनाये। तरह तरह के करो का भय कम से कम हो । जो भी लिया जाये सबसे लिया जाये किसी को न छोडा जाये। सरकार राजस्व लेने में ईमानदारी बरते। कोई भेदभाव न करे। प्रजा जागरुक बने। समझदार बने। विकास के नाम पर हो रही खुली लूट के छलावे में न आए। देश में दो झूठ सभी राजनीतिक दल बडी ईमानदारी से बढ चढकर बोल रहे है। एक है विकास और दूसरा गरीब का भला। इस झूठ को सच साबित करने के लिये हजारों योजनाए बन रही है। इनके लिये लाखो सर्वेक्षण किये जा रहे हैं। सरकार अरबों खरबों रु इन पर खर्च कर रही है। फिर इनके ओडिट एवं जांच पर इनसे भी कई गुना खर्च हो रहा है जो कि कतई बर्बादी ही है। जबकि यही पता नही कि हमें कैसा विकास

चाहिये, कौन गरीब है, किसको उपर उठाना है। गरीब को उठाना है या गरीबी को खत्म करना है। विकास एवं गरीब को उपर उठाने और डिजिटाइजेशन के नाम पर बेतहाशा सरकारी धन खर्च किया जा रहा है। सभी बडी विदेशी कम्पनिया चांदी काट रही है। देश से बाहर सारा नफा जा रहा है। हर बार बजट में गरीब पर अनाप शनाप करों की मार बढाई जा रही है। वह कैसा विकास है जिसमें बडी विदेशी एवं देशी कम्पनियां तो मालामाल हो रही है। मझले, छोटे,उद्यमी एवं व्यापारी कंगाल हो रहे है। गरीब और गरीब लाचार परेशान व मजबूर हो रहा है। पहले वोट जाति बिरादरी के नाम पर मांगे जाते थे। अब विकास एवं गरीब के भले के नाम पर मांगे जा रहे है। धीरे धीरे आप समाज को कई भागों पर बांटने में तुले हुये है। अपना मतलब साध रहे है। पूरे चुनाव में कोई 10 प्रतिशत भी सख्त कानून एवं न्याय व्यवस्था पर नहीं बोला, आतंकवाद पर नहीं बोला, शिक्षण समस्याओं पर नहीं बोले। प्राथमिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर नहीं बोला, खेल एवं मानसिक विकास पर नहीं बोला, कर व्यवस्था पर नहीं बोला। इस हिन्दुस्तान की मूल प्रकृति पर रोज कुठाराधात किया जा रहा है और नया हिन्दुस्तान बनाने की बात हो रही है। इस गरीब, लाचार मजबूर जनता को लूटने की कोई सीमा तो होगी। आपने कभी सोचा कि आप कितना कर जमा कर रहे है। उसका कितना पैसा वापस इस गरीब जनता को जाता है। ईमानदारी से इसका हिसाब उपर बैठे लोग कभी लगा नहीं सकते, आपका खर्च किया हुआ पैसा अधिकांश गडडे में जाता है और उसका फायदा कुछ चुनिन्दा लोग ही उठा पाते है। फिर गरीब को क्या चाहिये और आप क्या दे रहे है। आपको इसका अनुमान ही नहीं है। गांवो में जो लोग पहले पैदल या साइकिल पर चलते थे वे अब मोटर साइकिल पर चल रहे है। दुनियां भर का पेट्रोल खर्च कर रहे है। बैंक का ब्याज भर रहे है और अपना स्वास्थ्य खराब कर रहे है। क्या इसे विकास कहेंगे। घर घर मे हर आदमी के हाथ मोबाइल हो गया है इससे कौन कितने काम की बात करता है,कितनी व्यर्थ की बात कर दुनियां भर का पैसा खराब कर रहा है, क्या इसे समुचित विकास कहेंगे।

गांव गांव में स्कूल हो गये है,पर इनमें अध्यापक नहीं है,बच्चे नहीं है। जो है वे न पढा रहे है और न ही पढ रहे है। पढाई के अलावा सारा काम कर रहे है। क्या इसे विकास कहेंगे। दिनोदिन स्कूलों में पढाई एवं सरकार का स्तर गिर रहा है। पर हम विकास कर रहे है। ये चौडे एवं बडे रोड किसके लिये बन रहे है। जिससे कि बडे ट्रक एवं बडी गाडिया आसानी से तीव्र गति से आ जा सके। पर गांव वालो को तो पगडंडी भी नसीब नहीं है। आये दिन उनकी बैलगाडी ट्रैक्टर एवं उनकी जनता दुर्घटना का शिकार होते है क्या इसे विकास कहेंगे। पहले मोटे कपडे एवं चादर अपनी देश की बनी चीजे गांव में इस्तेमाल होती थी, उन पर खर्च भी कम लगता था। आज खाने से लेकर पहनने ओढने तक की सभी ब्रान्डेड हो गयी है। एक रुपये के दस रुपये दे रहे है और सारा पैसा विदेशों में जा रहा है। हमारे यहॉ समृद्धि कैसे आयेगी? क्या हम इसे ही विकास कहेंगे?

कल कारखानों के नाम पर हम सिर्फ असेम्बलिग कर रहे है और इसे हम विकास कह रहे है । क्या सिर्फ यह विकास करता है? गांव खाली हो रहे है। सारी आबादी शहरों की ओर दौड रही है। हम ज्यादा से ज्यादा स्मार्ट सिटीज बना रहे है। स्मार्ट विलेज नहीं बना रहे है। खेती दिन पर दिन छोटी हो रही है और वर्षो से खेती घाटे का सौदा रही है। गांव के लोगों पर से विश्वास उठ रहा है और हम विकास कर रहे है। हमारा देश आगे बढ रहा है। दिन पर दिन तकनीकी शिक्षा देने वाले संस्थान बढ रहे है। क्योंकि उनके पास बच्चे नहीं है। क्योकि पढाई पूरी करने पर बच्चों को नौकरी या व्यवसाय नहीं मिल रही है। मां बाप के पास पढाने के लिए पैसा नहीं है।

आज से 20 वर्ष पहले तक घर में एक व्यक्ति कमाता था और सारा परिवार पालता था इसलिये घर के मुखिया की इज्जत भी थी और घर सामूहिक इकाई के रुप में चलता था। पर आज सब कमा रहे है फिर भी घर नहीं चल रहा है क्योकि खर्चा ज्यादा हो गया है। लोगों की आवश्यकताए बढ गई है। परिवार में बिखराव बढ गया है। इस वजह से हर व्यक्ति तनाव में रहने लगा है। उधर हमारी सरकार एवं राजनेता कहते है कि हम विकास कर रहे है । मेरी समझ में सरकार के बेलफेयर स्टेट का कांन्सेप्ट ही सबसे खतरनाक है। इसके नाम पर इतना पैसा खर्च होता है जिसका रिटर्न कुछ भी नहीं आता। लेकिन सरकार पर इसका वजन बहुत पडता है और उसकी मार करदाताओं पर पडती है। जितना वेलफेयर का काम सरकार अपने पास रखेगी, उतना घाटा उठायेगी और भ्रष्टाचार बढायेगी। 125 करोड लोगों के इस देश में यह मोडल जिसमें सारे काम सरकार करे, पब्लिक सिर्फ पैसा कमाये और सरकार को टैक्स दे,यह असम्भव है। जिन सरकारों ने इस फार्मुले को अपनाया, जैसे युरोप एवं अमेरिका वे बहुत परेशान है और अपना खर्च चलाने के लिये पूरे विश्व को हर तरह से लूट रहे है। इस लूट से वे अपना काम चला रहे है। अब हम किसको लूटेंगे, जब हम बाहर नहीं लूट सकते तो अन्दर लूटेंगे। अन्दर किसको लूटेंगे? मझले छोटे व्यापारी, कर्मचारी एवं गरीब लूटे जायेंगे। इसका नतीजा क्या होगा? खूब कमाई, खूब खर्च एवं नतीजा फिर कंगाली, असंतोष एवं तनाव। भारत अपनी मूल प्रकृति के अनुसार क्यों नहीं विकसित किया जा सकता? क्यों हम विदेशों की अंधाधुध नकल में लगे हुये है? और जिस मांडल में अन्य देश परेशान है, वह माडल फेल भी हो रहा है। तो हम उसे क्यों अपना रहे है? यह वेलफेयर स्टेट एवं कृषि के बढावे के नाम पर खुली लूट हमें कही का नहीं छोडेगी। आप लाख

कमाये। जब 50 करोड लोग आपके भरोसे जी रहे हैं तो आपका खजाना कभी नहीं भर सकता। आप हमेशा कंगाल ही रहेंगे। जो सबसे ज्यादा मेहनत करते है स्वरोजगार के साथ जुडे हुए है अपना खर्चा खुद करते है अपने बच्चों की शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर खुद खर्च करते हैं, उन पर रोज नया कर भार डाला जाता है। हर आने वाली सरकार यही काम करती है। इसका नतीजा क्या हो रहा है? समझदार मेहनतकश आत्मविश्वासी एवं आत्मनिर्भर तबके का इस देश से विश्वास उठ रहा है। वह समझ चुका है कि इस देश में उसका कोई भविष्य नहीं है। यहा सिर्फ उसका उत्पीडन बेईज्जती एवं शोषण है, वह बहुत तेजी से विदेशों की ओर रुख कर रहा है। जो लोग लूट के पैसे से जी रहे है उनका देश के प्रति कभी न तो समर्पण है और न ही कुछ करने का जज्बा। क्योंकि उन्हें तो आदत पड गयी है फोकट का खाने की। उनकी नजर हमेशा सरकारी कोष सरकारी सुख सुविधा पर रहती है। ऐसे लोगों के बलबुते न देश बन सकता है न देश चल सकता है। हमें चाहिये ईमानदार देश भक्त समाज के प्रति संवेदनशील आत्मनिर्भर नवयुवक जो खुद के पैरों पर खडा हो अपने आपको परखे अपने परिवार को पाले और किसी के सामने हाथ न फैलाए। अनुदान मत दीजिये आगे बढने के अवसर दीजिये। शिक्षा मुफ्त में मत बांटिये। शिक्षा प्राप्त करने के अवसर दीजिये। इसके लिये आसान किश्तों पर सस्ती ब्याज पर लोन दीजिये। निजी एवं सरकारी तंत्र का भेद कम करिये। तभी शायद देश कुछ कर पायेगा। वर्ना कुछ नहीं होगा। एक बात और बताना चाहता हूँ अब तक जो कीर्तिमान विश्व पटल पर हर क्षेत्र में भारत के नवयुवकों ने बनाये हैं वे अपने बलबूते बनाये है । सरकारों का इसमें कोई योगदान नहीं है। सरकारें तो उनके योगदान के बाद सकिय होती है। इसका सारा श्रेय खुद ले लेती है। इस देश में सरकार अच्छे एवं ईमानदार प्रयासों को रोकने का काम बडी ईमानदारी से करती है।

देश सरकारों की वजह से बिल्कुल नहीं बढ रहा है। बल्कि इस देश की 125 करोड जनता के आगे बढने की जीजिविषा के कारण आगे बढ रहा है। ऐसा कहना गलत नहीं होगा। जो कुछ खराबिया नजर आती है। उसका मुख्य कारण सरकार का समाज व्यवस्था में अनावश्यक दखल है और समाज व्यवस्था को तोडने का अघोषित संकल्प मात्र है।

उत्तरः—मैं आपके विचारों से लगभग पुरी तरह सहमत हूँ मेरा तो यहॉ तक मानना है कि शिक्षा और स्वास्थ जैसे जनकल्याण के कार्य भी समाज पर छोड दें आम लोगों की कय शक्ति यदि बढने दी जाये तो वे शिक्षा और स्वास्थ भी खुद कर लेंगे। सरकार सिर्फ सुरक्षा और न्याय के बजट तक टैक्स ले और बाकी सभी कार्य परिवार गांव से लेकर अन्य केन्द्र तक की सामाजिक इकाईयों पर छोड देना चाहिए। कोई भी सरकार समाज को न मजबूत देखना चाहती है न ही एकजुट। इसलिए अधिक से अधिक टैक्स लगाकर एक कर्मचारियों की भारी भरकम फौज बनाई जाती है और उसके माध्यम से समाज के हर आंतरिक काम में हस्तक्षेप किया जाता है। इस संबंध में मेरे कुछ सुझाव इस प्रकार है।

एक ही मंत्र ''लोक नियंत्रित तंत्र''

सारी समस्याओं की जड राज्य का समाज पर हावी होना है। लोक को तंत्र पर हावी होना चाहिये, जबकि है इसके ठीक विपरीत। तंत्र आठ आधारों पर लोक को विभाजित करके रखता है। मुक्ति के लिये मेरे सुझाव ये हैं—

1) राज्य का एकमात्र दायित्व सुरक्षा और न्याय तक सीमित हो।

2) प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत मामले में निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता हो। किसी अन्य के प्रभावित होते ही उस पर सामाजिक व्यवस्था लागू हो जाये।

3) प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म मानने की पूरी स्वतंत्रता हो।

4) सबकी सहमति से सामाजिक व्यवस्था को पांच भागों में बांटा जाये। ये सभी इकाइयां आन्तरिक मामलों में स्वायत्त हों तथा सामाजिक मामलों में परतंत्र। परिवार, गांव, जिला, प्रदेश, देश।

5) परिवार न्यूनतम दो व्यक्तियों का हो सकता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य का परिवार में सम्पूर्ण समर्पण हो। परिवार व्यवस्था लोकतांत्रिक अर्थात सबकी सहमति से बने।

6) कोई भी सम्पत्ति किसी की व्यक्तिगत नहीं हो। व्यक्ति सम्पत्ति का संरक्षक मात्र हो। सम्पत्ति पर परिवार का स्वामित्व हो। सम्पत्ति की सीमा समाज बना सकता है,राज्य नहीं।

7) सभी संस्थाओं को सामाजिक संवैधानिक मान्यता प्राप्त हो किन्तु संगठनों को न मान्यता प्राप्त हो न प्रतिबंध लगे।

8) राज्य धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र, लिंग, गरीब अमीर, किसान मजदूर सहित किसी भी मामले में दो व्यक्तियों के बीच भेद नहीं कर सकता। समाज ऐसा भेद कर सकता है तथा राज्य समाज को ऐसा भेद करने से नहीं रोक सकता।

3 आचार्य पंकज वाराणसी से

प्रश्नः—आपने किसानों पर गोली चलाने का समर्थन करते हुए मृतको को मुआवजे का विरोध किया। आप राज्य द्वारा मनमाने बलप्रयोग का समर्थन कैसे कर रहे हैं जबकि गांधी जी तथा लोहिया जी ने राज्य द्वारा न्यूनतम बलप्रयोग की बात कही गई थी।

उत्तरः— गांधी जी तथा लोहिया जी ने क्या कहा तथा किस परिस्थिति में कहा इसका उत्तर मैं नहीं दे सकता। मैंने जो कहा वह मेरा कहना है और मैं उसे ठीक मानता हुं। लोकतंत्र में सामाजिक बलप्रयोग की अनुमति नहीं दी जा सकती। यदि कोई व्यक्ति कानून तोडता है तो राज्य को आमतौर पर संतुलित और आवश्यक हो तो अधिकतम बलप्रयोग करना चाहिये। राज्य द्वारा न्यूनतम बलप्रयोग मानने के कारण ही कानून तोडने की आदत बन गई है और समाज में हिंसा बढ रही है।

मैंने कानून तोडने वालों पर गोली चलाने का हमेशा समर्थन किया है। जब मंदिर मस्जिद विवाद में कार सेवको पर गोली चली थी तब भी मैंने गोली चलाने का भरपूर और खुला समर्थन किया था। मैं लोकतंत्र में किसी को कानून तोडने की इजाजत नहीं दे सकता

4 प्रमोद केशरी जी

प्रश्नः— आपने अपने लेख में अप्रत्यक्ष रुप से तानाशाही का समर्थन किया। आप बताइये कि तानाशाही और व्यवस्था में क्या संबंध है?

उत्तरः—कोई भी व्यवस्था तीन तरीकों से चलती है। 1 लोकतंत्र 2 तानाशाही 3 लोक स्वराज्य । लोकतंत्र में अव्यवस्था, तानाशाही में सुव्यवस्था या कुव्यवस्था तथा लोक स्वराज्य में व्यवस्था होती है। किसी भी कार्य के परिणाम से प्रभावित व्यक्ति और कर्ता के बीच की दूरी जितनी कम होगी व्यवस्था उतनी ही अच्छी होगी। इसलिये तानाशाही और लोक तंत्र की तुलना में स्व व्यवस्था अच्छी मानी जाती है। अब तक भारत अव्यवस्था की ओर चला। अब भारत सुव्यवस्था अथवा कुव्यवस्था के बीच में चल रहा है किन्तु समाधान स्वव्यवस्था में ही निहित है।

5 आचार्य पंकज जी

प्रश्न— आदरणीय मुनि जी यह विषय आपके समक्ष विचारणीय है कि भारत का कानून स्वतंत्रता के बाद भी ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा स्थापित कानून ही है आई.पी.सी और सी.आर.पी.सी अंग्रेजों का शासन करने के लिए बनाया हुआ कानून है आजादी के इतने वर्षो बाद भी कोई माई का लाल उसे बदल नहीं सका है आप कानून की रक्षा में हर समय तैयार रहते हैं संविधान के साथ—साथ भारतीय आरोपित कानून की समीक्षा अवश्य होनी चाहिये। कानून से जनमा शासित होती है इस देश का कानून है जिसे अंग्रेजो ने बनाकर भारत को गुलाम रखा ऐसे कानून ऐसे काले कानून को तोडने की बात नहीं समाप्त करने की बात है।

उत्तरः—कोई कानून यदि अंग्रेजो का बनाया हुआ है इसलिए बदला जाये यह तर्क ठीक नहीं। कानून सही है या गलत इसकी समीक्षा होनी चाहिए। हमारा कर्तव्य है कि यदि तंत्र की इकाइयां भूलवश या जान बूझकर ऐसे कानूनों की समीक्षा नहीं कर रही तो हम उन्हें ऐसे बदलाव के प्रस्ताव दें,जो उचित हों।

सिर्फ विदेशी कानूनों की ही नकल नहीं की गई बल्कि संविधान की भी नकल की गई जो कानून की अपेक्षा कई गुना ज्यादा खतरनाक है। विदेशी संविधानों की नकल करके भारतीय संविधान में कुछ मौलिक अधिकार जोडे गये जबकि विदेशी संविधान निर्माता मौलिक अधिकार की न परिभाषा जानते थे, न ही उपयोग। भारतीय संविधान से परिवार और गांव व्यवस्था को भी बाहर निकालना नकल का ही परिणाम था। वर्ग समन्वय की जगह वर्ग विद्वेष पैदा करने वाले धर्म, जाति, उम्र, लिंग सरीखे प्रावधानों को संविधान में जोडना भी नकल ही मानना चाहिये। इसमें कई प्रावधान पश्चिम की नकल से लिए गये हैं तो अनेक साम्यवादी देशों की भी नकल है। संविधान संशोधन का अंतिम अधिकार तंत्र के पास रहना साम्यवाद की नकल है। संविधान पर हमारा अर्थात समाज का नियंत्रण होना चाहिए। संविधान के माध्यम से समाज तंत्र पर अंकुश बनाये रखता है और तंत्र कानून के माध्यम से व्यक्ति पर अंकुश बनाता है। भारत में तो कानून पर भी तंत्र का नियंत्रण हो गया और संविधान पर भी। मेरा मत है कि छोटी बुराई की अपेक्षा बुराई की जड़ पर ध्यान देना चाहिए। संविधान समाजशास्त्र का विषय है और कानून राजनीतिशास्त्र का। संविधान बनाते समय या तो राजनीतिज्ञों का बहुमत था या अधिवक्ताओं का। समाजशास्त्री तो शायद ही कोई रहे होंगे। गांधी विनोबा सरीखे लोग भी तो बाहर ही थे। अब कानून की जगह संविधान मंथन से शुरुवात करनी चाहिये। मैं मानता हूॅ कि आप अर्थात आचार्य पंकज जी संविधान मंथन सभा के प्रमुख के रुप में निरंतर सक्रिय हैं। अन्य लोगों को भी इसमें सहभागी होना चाहिए।

6) नारायण कौरव जी फेसबुक से

प्रश्न–आपने गुप्त मुकदमा प्रणाली का सुझाव दिया है। क्या इस प्रणाली से राज्य और अधिक शक्तिशाली नहीं हो जायेगा?

उत्तरः– समाज की दो समाधान चाहिये–(1) राज्य का सामाजिक मामले में हस्तक्षेप कम हो। (2) समाज को अपराधियों से मुक्ति मिले। वर्तमान समय में अपराध मुक्ति में राज्य विफल हो गया है। यदि लोकतंत्र रहे और अपराध बढते रहें तो समाज को कुछ विशेष प्रावधान सोचने पडते हैं। मैं जहॉ का हूॅ वहॉ नक्सलवादियों के विरुद्ध लोग गवाही नहीं देते थे और नक्सलवादी गवाही देने वाले की हत्या करते थे। न्यायालय गवाही के अभाव में उन्हें छोड देता था। हम लोगों ने मिलकर पुलिस पर दबाव बनाया कि हमें अपराध मुक्ति चाहिए चाहे कानून से हो या बिना कानून के। पुलिस वालों ने हमारे पूरे क्षेत्र को नक्सलवाद से मुक्त कर दिया। मैं समझता हूॅ कि यह हमारी मजबूरी थी, आदर्श स्थिति नहीं। इसलिए मेरा सुझाव है कि न्यायपालिका की भूमिका भी होनी चाहिए और अपराध नियंत्रण भी होना चाहिए। यदि न्यायपालिका स्वतंत्र रुप से अपनी स्वतंत्र इकाई से जांच कराकर किसी को दण्ड या फांसी देती है तो विशेष परिस्थितियों में अल्पकाल के लिए इसे कैसे लोकतंत्र के विरुद्ध माना जाये। लोकतंत्र के विरुद्ध तो यह स्थिति मानी जायेगी कि अपराधी अपराध करने के बाद भी न्यायालय से निर्दोष सिद्ध हो जाये । मुझे तो ऐसी भी उम्मीद है कि कुछ बड़े राजनेता जिनमें मंत्री भी शामिल हो सकते है । इस गुप्तचर प्रणाली में चुपचाप दण्डित हो जायें। आप बताइये कि इस में क्या गलत है। यदि अपराध नियंत्रण के लिए आपके पास कोई और अच्छा सुझाव हो तो आप बताने की कृपा करिये।

7) वासुदेव रंगवाला तिरुपुर,तमिलनाडू

प्रश्नः–आपके सम्पादन में प्रकाशित होने वाली पत्रिका ज्ञानतत्व पत्रिका बराबर प्राप्त हो रही है। यथाशक्ति पढने का प्रयास रहता है। पत्रिका में कई प्रकार की नई जानकारियॉ तथा जीवनपयोगी तत्व पढने को मिलते है। इस बार अंक 03 वर्ष 14 पढा उत्सुकता हुई पत्र लिख रहा हूॅ।

पत्रिका में मंथन कमांक 29 महिलाओं के लिए बहुत उपयोगी तथा शिक्षाप्रद भी है। पृष्ठ 6 पर सेक्स के बारे में लिखा गया है। विवाह की उम्र में सुधार लाना आवश्यक है। बार बालाओं और वैश्यालयों के बारे में सरकार की नीति सरल होती जा रही है। राजा महाराजाओं के समय भी वेश्यालय नर्तकियों का चलन था। उन्हें आवश्यक माना जाता था। राज दरबारों में भी नर्तकिओं का प्रोग्राम होता रहता था तथा सभी दरबारी आमंत्रित रहते थे। अब राजघराने ही समाप्त हो गये है। हर शहर में वैश्यालयों का मौहल्ला होता था। जनता किसी कारण अगर सेक्स की भूख नहीं मिटा पाती तो फिर इनका उपयोग होता रहता था। अभी कुछ सालो पहले भी शहरों में यह इंतजाम रहता था। पिछले 25–30 सालों में यह रोक अवैध मान्यता के कारण बंद से ही है। अब यह धन्धा बडे–बडे घनाघम लोगों में शुरु हो गया है। इस धंधे में बडे घरों की औरतों का काफी सहयोग रहता है। पैसा तथा सेक्स की दोनों प्रकार की तृप्ति होती है। महिनों साथ रहते है उनका बाद में मनमुटाव पैसों की लेन देन हो जाता है तो लडकी उनके घर से भाग कर पुलिस में चली जाती है और वही बलात्कार का रुप ले रहे है। कहॉ तक सही है विचार करने का मामला है।

आजकल पत्रिकाओं में टी.बी. आदि में खबरें पढने को मिलती है कि 6 से 7 साल की बच्चियों के साथ बलात्कार हो रहा है। बडी विचारनीय बात है। 6–7 साल की बच्ची के साथ कोई पुरुष कैसे अपने सेक्स की भूख मिटा पायेगा। किन्तु यह ऐसा क्यों हो रहा है । इस समय वह नशे में होता है और नशे की हालत में ऐसा कुकर्म कर बैठता है। नशा उतरने के बाद या फिर पुलिस के द्वारा पकडे जाने पर भी बहुत अफसोस तथा पछतावा करता होगा। परन्तु नशे पर ही कन्ट्रोल नहीं हो रहा है।

शादी समारोह, उत्सव, रिश्तेदारों का निमन्त्रण अन्दर पार्टिया में आजकल फैशन, दिखावा, आकर्षण, दिखने के लिए अर्धनग्न, वेशभूषा, तथा उछलकुद, गाना बजाना, पार्टी में मद्यपान, मांसाहार आदि के जोश में अपना होश हवास भूल जाते है और ऐसी हालत में सेक्स अपराध होना संभव है।

विवाहित पति पत्नि के बीच बिना अनुमति के शारिरीक संबंध को अगर बलात्कार समझा जायेगा, तो नया होगा। कोई पुरुष अपनी पत्नि के साथ जबरदस्ती या समझ इसके बाद सेक्स भी भूख नहीं मिटायेगा तो फिर क्या वह अपनी भूख मिटाने के लिए दूसरी औरत के द्वार जाने को मजबुर नहीं होगा ,वही बलात्कार का रुप है।

उत्तरः–आपने अच्छी विवेचना की है। यदि कुछ स्त्री पुरुष, अर्द्धनग्न वेशभूषा उछलकूद, गाना बजाना और उत्तेजक कार्य स्वैच्छा से करते है तो उसमें हमें या समाज को क्यों आपत्ति होनी चाहिये। किसी को सेक्स से दूरी बनाने से सुख प्राप्त होता है और किसी को सहमत सेक्स से सुख प्राप्त होता है। तो हमारा कर्तव्य है कि हम दूसरों को समझा तो सकते है किन्तु बाधा नहीं पैदा कर सकते। न ही कोई कानून बना सकते हैं। यदि कोई ब्लू फिल्म एकांत में देखता है तो मेरे विचार से कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए।

8) एम एस सिंघला, अजमेर, राजस्थान

प्रश्नः— ज्ञानतत्व अंक 344 पूरा पढा। स्वास्थ खराब रहने के बाद भी प्रतिकिया के लिए विवश हूॅ। अंक में अनेक विषयों पर आपके विचार सुलझे हुए और संगत है। दिल्ली सरकार के मंत्री के यौन संबंध के बारे में आपके विचार स्पष्ट और उपयुक्त है। वस्तुतः तथ्य यह है कि स्त्री को ईश्वर की ओर से पैसिव एजेंट बनाया गया है और लज्जा के आवरण में ढक्कर रखा गया है अन्यथा वह पुरुष से कहीं आगे है। इसी कम में महिला सशक्तिकरण पर युक्तियुक्त विचार प्रस्तुत किये गए है। इसी विषय में जानने के लिए सूत्रवत कंस से कबीर तब की अवैध यात्रा का अवलोकन किया जा सकता है जिनमें कर्ण और कुणाल के इतिहास शामिल है।

इस अंक में श्री चिदम्बरम का उल्लेख हुआ है। मैंने देखा है कि वे संसद में लुंगी लगाकर आते थे किन्तु अमरीका जाने पर सूट बूट टाई के बिना जंचते नहीं थे। इन छोटी छोटी बातों के निहितार्थ निकलते हैं जो किसी के मानस पटल का परिचय देते है। आप छोटी छोटी बातों को महत्व देना उचित नहीं मानते। आप सूक्ष्म किन्तु महत्वपूर्ण मुददों को ही अपना विषय बनाते है। यह बहुत अच्छा है किन्तु लगे हाथ छोटे छोटे बिन्दुओं को भी साथ लेकर चला जाये तो सार्थकता बढ सकती है। ऐसा मेरा विचार है। मैं इसी पर कुछ कहना चाहूंगा।

आप नामकरण को महत्व नहीं देते। अन्यथा इसका महत्व देखिये। दक्षिण भारत इतना राष्ट्रवादी तथा पुरातनवादी रहा कि देश के स्वतंत्र होते ही उसने मद्रास शब्द को तिलांजलि दे दी और तमिलनाडु हो गया। मद्रास नामक बचा नगर भी आगे चलकर चेन्नई हो गया। इसके विपरीत उत्तर भारत की दयनीय दशा देखिये । उत्तर भारत में दो प्रदेश अपने कोई वास्तविक/ऐतिहासिक/संगत नाम नहीं पा सके और उत्तर प्रदेश मध्यप्रदेश हो गए। इतना ही नहीं संसार में भारत ही ऐसा देश है जो अपना नाम खो बैठा है और दो प्रमुख नामों से जाना जाता है— भारत और इण्डिया। देश का संविधान भी उसको अपना नाम नहीं देता। आप ही के किसी प्रकाशन से ज्ञात हुआ था कि सत्ता हस्तान्तरण की शर्तो में शर्त थी कि देश का नाम इण्डिया रहेगा।

देश के अलावा देश की राजधानी दिल्ली नगर की तीन भाषाओं में अपनी अपनी वर्तनी है। कहॉ तक संगत है। कहीं और ऐसा उदाहरण मिलेगा? जब श्री कल्याण सिंह उ0प्र0 के मुख्यमंत्री थे, उन्होने राज्य के चार नगरों के नाम बदलना चाहा था। तथाकथित पढे लिखे वर्ग ने आपत्तियों का अम्बार लगा दिया था। इसके विपरीत कोलकाता, मुम्बई, तिरुअनन्तपुरम आदि अनेक नाम हैं जो भारतीय हो चुके किन्तु देश के अन्य विशाल भूभाग अपने इतिहास के प्रति आंसू बहाते दिखाई पडते हैं। राजनीति ने देश में राज्यों की संख्या तो बढाकर डेढगुना कर दी किन्तु सार्थक तथ्य अंधकार में ढकेल दिये गए।

आपने कानून का अच्छा महत्वपूर्ण मुददा उठाया है। देश में अंग्रेजी कानून ही लागू है। ज्ञानतत्व के किसी अंक में यह भी उजागर किया जा चुका है कि आजादी की एक शर्त यह थी कि अंग्रेजी कानून ही इस देश में लागू रहेंगे। तब मात्र कारागारों के भरोसे कब तक और कैसे न्याय दिया जाता रहेगा या दिया जा सकेगा विचारणीय है। इतना ही नहीं आपके द्वारा पुलिस और न्यायपालिका की भूमिका पर भी बेबाक, तथ्यात्मक और साहसिक विवेचना की गई हैं।

यह ज्वलन्त वास्तविकता है कि देश का अधिकांश राजस्व जेल और सरकारी तंत्र के पोषण में खर्च हो जाता है और धनाढय राजनेता कर मुक्त रहते है। सच्चाई यही है कि देश को राजनीति की शतरंज बना लिया गया है। कब कौन सी चाल चलनी है अर्थात कब ढाई घर चलकर किस दल को या किस विषय को कैसे शह मात देनी है, कब वजीर को सीधा या तिरछा चलाना है ऐसे ही खेल चाले चली जा रही है। समय ने करवट ली है देखते है मोदी जी क्या कर पाते है। आहत राजनीति ने उन्हें हिटलर कहना तो शुरु कर दिया है।

उत्तरः—दक्षिण भारत या बंगाल ने शहरों के नाम बदलने का जो प्रयत्न किया वह मेरे विचार में महत्वपूर्ण मुददों पर से ध्यान हटाने का प्रयास था। दक्षिण भारत में आई एस आई एस का खतरा बढ रहा है। बंगाल भी अल्पसंख्यक आतंकवाद से परेशान है। भ्रष्टाचार के मामलों में भी दक्षिण भारत और बंगाल निरंतर आगे ही बढ रहे है। ऐसे समय में इन प्रदेशों में शहरों के नाम बदलने की जो बेमतलब की कसरत की उसका उत्तर भारत में अनुकरण न करके कुछ गलत नहीं किया है। मेरे विचार में ये सब बैठे ठाले की कसरत वर्तमान समय के लिए उपयुक्त नहीं है। यदि मोदी जी ने हिटलर के भी गुण दिखते हो तो तब तक गलत नहीं जब तक मोदी जी हिटलर के दुगुर्णों की ओर नहीं बढते। हिटलर ने प्रारंभ में बहुत अच्छे काम किये थे। मुझे उम्मीद है कि मोदी जी हिटलर के दो गलत कार्य—1 जातीय हिंसा और 2 विश्व युद्ध की दिशा में कदम नहीं बढायेंगे। यदि ये दो काम नहीं किये गये तो मोदी जी का कार्यकाल बहुत अच्छा माना जायेगा।

निवेदन

मंथन कार्यक्रम नौ माह से चल रहा है । अभी सैंतीसवा अंक गया है। प्रगति संतोषजनक है। विपरीत विचारों के लोग भी जुडते जा रहे हैं। फेसबुक, वाट्सअप, वेबसाइट तथा ज्ञानतत्व के माध्यम से शनिवार को एक विषय

पर विस्तृत विचार तथा एक सप्ताह तक उस विषय पर टुकडों में विचार मंथन होता है। मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि मंथन का उद्देश्य विचार मंथन तक ही सीमित है, विचार प्रचार नहीं। मंथन में आमतौर पर ऐसी चर्चा अधिक होती है जो समाज में आम धारणा के विपरीत हो। हम लिखते समय विचार और भाषा में पूरी शालीनता का ख्याल करते हैं। किन्तु कभी किसी मित्र को ऐसा लगे कि मेरी भाषा में कहीं त्रुटि हुई है तो आप अवश्य लिखें जिससे मैं स्थिति स्पष्ट कर सकूं।

मंथन को और अधिक प्रभावी बनाने के उददेश्य से प्रतिमाह एक दिन दिल्ली में प्रत्यक्ष मंथन की योजना बनी है। इस प्रत्यक्ष मंथन योजना का शुभारंभ पांच अगस्त को विजय कौशल जी महाराज द्वारा कौशाम्बी में किया जायेगा। किन्तु मंथन की योजना का पूर्वाभ्यास तथा शुभारंभ तैयारी चर्चा पचीस जून 2017 को प्रातः नौ बजे से शाम पांच बजे तक कौशाम्बी में ही होगी। मंथन की पूरी व्यवस्था प्रमोद केशरी जी कर रहे है। उनका फोन नम्बर–8826902656

पच्चीस जून 2017 के मंथन के चार विषय हैं–

(1) वर्ग संघर्ष या वर्ग समन्वय। (2) महिला परिवार की सदस्य या वर्ग। (3) ग्राम संसद (4) मंथन का तरीका और प्रभाव।

प्रातः नास्ता, दोपहर भोजन, शाम नास्ता के बाद कार्यक्रम समाप्त होगा। आप सबसे निवेदन है कि आप इस पूर्वाभ्यास में शामिल होने की कृपा करेंगे।

दिनॉक व समय– 25 जून 2017, प्रातः नौ बजे से

स्थान– फ्लैट नंबर–303, शिप्रा कृष्णा एज्योर, कौशाम्बी मैट्रो स्टेशन के पास कमल हॉस्पीटल के सामने बैंक आफॅ बडौदा के उपर, कौशाम्बी, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश–201010

कार्यालय सचिव–टीकाराम देवरानी

फोन नम्बर–8826290511

निवेदक– श्री बजरंग मुनि

मोबाईल नम्बर– 9617079344

उत्तरार्ध

व्यवस्थापक

ग्राम संसद अभियान,

केन्द्रीय कार्यालय–फ्लैट नं0– 303, एज्योर शिप्रा कृष्णा, नियर कौशाम्बी, मेट्रो,

कौशाम्बी, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश–201010

---

vyavasthapak@rediffmail.com

I
दिनांक –02/06/2017

लोक प्रदेश आयोजन समितिः एक प्रारूप

सेवा मे,

सम्मानित लोक प्रदेश प्रमुख/जिला संयोजक/ नीति सभा/ अर्थपालिका /संविधान सभा के सदस्यगण।
उद्देश्य– सभी लोक प्रदेशो मे लोक प्रदेश सम्मेलन आयोजित होने हैं। सम्मेलन की आयोजन समिति बन रही है। उसका यह प्रारूप है।

महोदय,

उपयुक्त विषय के संदर्भ मे ग्राम–स्तर से लोक प्रदेश स्तर तक की कार्यवाही को अमलीजामा प्रदान करने के लिये संगठन मे निम्नलिखित प्रारूप के अनुसार साथियों को तलाशने व तराशने को महत्व देते हुए यह एक दिशा निर्देश हैः–

	पद/पदनाम	संख्या
1	संयोजक	एक
2	सह संयोजक	एक (आवश्यकतानुसार)

3	सचिव	एक
4	अर्थपालिका सदस्य	एक
5	नीति सदस्य	एक
6	संविधान सदस्य	एक
7	कार्यकारिणी	पांच से दस तक (समान्यता)

उपर दिये गये कमेटी का प्रारूप विचारणीय तौर पर तैयार किया गया है। आवश्यकतानुसार परिवर्तन संभव है।

लोक प्रदेश आयोजन समिति

1. लोक प्रदेश समिति की बैठक मे लोक प्रदेश प्रमुख, नीति सदस्य साथ ही सभी जिला संयोजक उपस्थित रहेगें।
2. प्रत्येक लोक प्रदेश आयोजन समिति की बैठक मे दूसरे लोक प्रदेश समिति के सदस्य (यथासंभव) उपस्थित रहेगें।
3. आयोजन समिति, सम्मेलन की तिथि व समय पूर्व मे निर्धारित करे।
4. आयोजन समिति मे प्रत्येक जिले का न्यूनतम एक सदस्य अवश्य हो ।

सचिव केन्द्रीय कार्यालय – टीकाराम देवरानी

चलभाष–8826290511